

Reg No 177/2008-2009

ISSN: 2322-0317

PSSH PERSPECTIVE *of*
SOCIAL SCIENCES
and HUMANITIES

An International Multidisciplinary Refereed Research Journal

VOL 2, NO 2

JULY - DECEMBER 2010

Biannual

Editor

Dr Hemant Kumar Singh

Assistant Professor

Economics Department

Madan Mohan Malviya PG College

Deoria (UP)

Publisher

Herambh Welfare Society

Varanasi (India)

भारतीय राष्ट्रीय- सांस्कृतिक चेतना के गौरव: 'दिनकर'

विजय प्रताप निशाद¹

रामधारी सिंह 'दिनकर' की काव्य-चेतना भारत-राष्ट्र की सांस्कृतिक धारा की रसवन्ती है। भारत की राष्ट्रीय भाव-धारा 1857 की लड़ाई या उसके बाद उपजी चेतना नहीं है, वह 'महाभारत काल' के भी पूर्व में जन्मा और घनीभूत होता राग-भाव है। 'महाभारत' के 'भीष्मपर्व' में धृतराष्ट्र संजय से उस भरत भूमि के प्रति जिज्ञासु है, जिसे प्राप्त करने की लालसा उनके पुत्र दुर्योधन के भीतर बलवती है और पांडव भी जिसे धर्मयुद्ध से पाना चाहते हैं—

यदिदं भारतं वर्षं यत्रेदं मूर्च्छितं बलम्।
यत्राति मात्र लुब्धोअयं पुत्रो दुर्योधनो मम्॥
यत्र गृद्धाः पाण्डुपुत्रा यत्र में सज्जते मनः।
एतन्मे तत्वमाचक्ष्व त्वहिं मे बुद्धिमान मतः॥

रामधारी सिंह 'दिनकर' इसी अनादिक भारत की सांस्कृतिक पीठिका पर बैठकर वर्तमान में राष्ट्र-चिन्तन करने वाले कवि हैं। राष्ट्रीयता उनके काव्य का प्रधान स्वर है। राष्ट्रीय भाव की कविता में अभिव्यक्ति के सम्बन्ध में माखनलाल चतुर्वेदी कहते हैं— "राष्ट्रीय कविता क्या है? राष्ट्रीय कविता केवल खून, फाँसी, हथकड़ी, बेड़ियों की कविता नहीं है : राष्ट्र की प्रत्येक चीज पवित्र है : गौरव की वस्तु है। राष्ट्र को मैं विशाल और महान मानता हूँ। उसे मैं समस्त भूतकाल से लेकर भविष्यकाल की नाप से नापता हूँ। ऐसी ही सनातन राष्ट्रवाणी है। राष्ट्रीय कविता घुँघरू बाँधकर ही मनोरंजन नहीं करती या मधुर अलापों से माधव का गायन ही नहीं करती, किन्तु वही युद्ध के प्रभावकाल में लंकाकाण्ड का भीषण रूप भी धारण कर लेती है और सैनिकों को बलि-पथ पर आमंत्रित करती है।"

'दिनकर' के काव्य में राष्ट्रीयता वायवीय रूप में कम अन्तः सौन्दर्य के रूप में अधिक अभिव्यक्त हुई है। स्वाभाविक है कि यह आन्तरिक सौन्दर्य कवि के सांस्कृतिक-बोध से जन्मा है। इस सांस्कृतिक-सौन्दर्य के निर्माण के मूल में मनुष्य समुदाय है। उनकी दृष्टि मूलतः व्यष्टि नहीं, समष्टि पर है और समूह-चेतना के अस्तित्व का चिन्तन वे राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्यों में करते हैं, जिसका खुलासा युधिष्ठिर और भीष्म पितामह के संवादों द्वारा 'कुरुक्षेत्र' में हुआ है।

महाभारत नही था द्वन्द्व केवल दो घरों का,

¹ शोध छात्र (हिन्दी विभाग) दी0द0उ0गो0वि0वि0 गोरखपुर

*अनल का पुंज था इसमें भरा अगणित नरों का।
न केवल यह कुफल कुरुवंश के संघर्ष का था,
विकट विस्फोट यह सम्पूर्ण भारतवर्ष का था।*

‘दिनकर’ अपने सांस्कृतिक-राष्ट्रीय चैतना में तीन तरह से प्रकट होते हैं। प्रथम-वे कविताएँ जिनमें राष्ट्र-प्रेम समसामयिक सन्दर्भों के साथ तीव्रता से उद्घाटित होता है। द्वितीय-वे कविताएँ जहाँ ‘इतिहास दृष्टि’ पुराण के प्रसंगों का आधार लेकर अपने सांस्कृतिक मूल्यों को समेटकर बैठी है। ‘दिनकर’ की ‘इतिहास दृष्टि’ से जहाँ एक नहीं अनेक प्रश्न पैदा होते हैं- युद्ध, दण्ड-नीति, दनुजता, दासत्व, अविश्वास, भोग-लिप्सा, पारम्परिक कलह, अत्याचार, स्वत्व-रक्षण से जुड़े हुए। युधिष्ठिर आत्मविगलित हो कहते हैं-

*पाँच ही असहिष्णु नर के द्वेष से
हो गया संहार पूरे देश का।*

तृतीय-वे कविताएँ जिनमें कवि भारत के भूमि सौन्दर्य का वर्णन करता है। नदी-वन-पर्वत-खेत-खलिहान, सुबह-साँझ, पुष्प-लता, पशु-पक्षी, हिमगिरि-सिन्धु का सौन्दर्य चित्र शब्द-शब्द में उकेरता है।

‘दिनकर’ अपने काव्य में राष्ट्र के प्रति केवल उद्बोधन अथवा उपदेश तक सीमित नहीं हैं, संस्कृति के प्रति अटूट आस्था, मानव की शक्ति में दृढ़ विश्वास, अन्त्यजों के प्रति सहानुभूति, परिवर्तन के प्रति उत्साह और जीवन मूल्यों की रक्षा का स्वर बार-बार उनकी कविताओं में गूँजता है। यही नहीं : कविता ही इन सबकी सुरक्षा में कारगर हो सकती है- यह विश्वास ‘क्रान्ति-धात्रि कविते’ कहकर व्यक्त हुआ है। राष्ट्रीय जागरण की शक्ति वे अतीत में तलाशते हैं- जागो गौतम, जागो महान, जागो अतीत के क्रान्ति गान’ कहकर वे भारत-राष्ट्र की ‘धर्म-सत्ता’ को ही वर्तमान के विध्वंसक दौर में स्थापित करना चाहते हैं। इसलिए अपने समय के महान पुरुष में इस धर्म-तत्व के दर्शन करते ही वे गाँधी के बारे में कह उठते हैं- ‘तू सहज शान्ति का दूत, मनुज के सहज प्रेम का अधिकारी।’ भारत का राष्ट्रध्वज उन्हें ‘मंगल-मूर्ति तिरंगा प्यारा’ लगता है इसके मूल में ‘दिनकर’ का वह सांस्कृतिक मनोगत है जो पुरातन-अर्वाचीन, परम्परा-आधुनिकता, विराग-अनुराग, विरक्ति-आसक्ति, व्यष्टि-समष्टि, अतीत-वर्तमान भविष्य की परिमिति को लाँघकर अभिव्यक्त होता है-

*भारत एक स्वप्न भू को ऊपर ले जाने वाला।
भारत एक विचार स्वर्ग को भू पर लाने वाला।।
भारत एक भाव जिसको पाकर मनुष्य जगता है।
भारत एक जलज जिस पर जल का न दाग लगता है।।
भारत है संज्ञा विराग की उज्ज्वल आत्मउदय की।
भारत है आत्मा मनुष्य की सबसे बड़ी विजय की।।*

रामधारी सिंह ‘दिनकर’ भारत राष्ट्र की स्वतंत्रता और उसके लिए किए जा रहे संघर्ष को जीवन-मूल्य तथा ‘स्वधर्म और स्वराज्य’ का अनिवार्य उपादान मानते हैं। उनकी रचना-भूमि में 1857 का स्वतंत्रता संग्राम उत्प्रेरक का काम करता है। जिस स्वतंत्रता संग्राम के लिए विनायक दामोदर सावरकर 10 मई, 1908 को सायं 4 बजे इण्डिया हाउस 65 क्रामवेल एवेन्यु,

हाईगेट—लंदन उत्तर के भवन परिसर में 1857 के प्रथम भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की पहली 50 वीं वर्षगांठ के अवसर पर 'हे हुतात्माओं' शीर्षक से दिए गए अपने भाषण में कहते हैं— "जब भी कोई राष्ट्र अपनी स्वतंत्रता के लिए उत्तिष्ठ हो उठता है, जब भी किसी राष्ट्र के पितृ-भू के रक्त में स्वतंत्रता के जीवाणु लहकने लगते हैं, स्वतंत्रता का शुक्र-बीज अंकुरित हो उठता है और जब तक ऐसे पितृ-भू का एक भी पुत्र रक्त का प्रतिशोध लेने के लिए जीवित रहता है, तब तक ऐसे 'स्वातंत्र्य समर' का कभी भी अंत नहीं होता, वह चलता रहता है, सत्त गतिमान रहता है। मेरे देश बन्धुओं, 1857 का 'स्वाधीनता संग्राम' आज भी जारी है— 'स्वातंत्र्य समर' और भी शेष है। कोई भी क्रान्ति-युद्ध संधि की सरहदों पर नहीं रूकता। केवल एक ही शर्त होती है, एक ही लक्ष्य, या तो 'पूर्ण स्वतंत्रता' अथवा 'महामृत्युवरण'।" (विनायक दामोदर सावरकर का 'हे हुतात्माओं' शीर्षक से 'साहित्य अमृत', दिल्ली अगस्त, 2008 में प्रकाशित लेख, 27-28, अनुवादक—वीरेन्द्र अग्रवाल)।

जस्टिन मैकार्थी ने कहा है— "वस्तुस्थिति यह है कि भारतीय प्रायद्वीप के सम्पूर्ण उत्तरी एवं उत्तरी-पश्चिमी प्रदेशों में ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध जातियों ने विद्रोह कर दिया था। केवल सिपाहियों ने ही विद्रोह नहीं किया, इसे कोरी "सैनिक क्रान्ति" का नाम नहीं दिया जा सकता। यह तो भारत पर आंग्ल सत्ता के विरुद्ध सैनिक कठिनाइयों, राष्ट्रीय घृणा और धार्मिक कट्टरता का संयुक्त उभार था। इसमें देशी राजाओं और सैनिकों ने भी भाग लिया। मुसलमानों और हिन्दुओं ने अपने शताब्दियों के धार्मिक विरोध को भुलाकर ईसाइयों के विरुद्ध हाथ मिलाए थे। घृणा और चिन्ता ने इस महान विद्रोह आन्दोलन को प्रोत्साहित किया था।" ('रचना', भोपाल, जनवरी-अप्रैल, 2008 में प्रकाशित लेख से उद्धृत—पृ011)।

उक्त कथन में 'घृणा और चिन्ता' शब्द विशेष ध्यातव्य है। ये दोनों तथ्य कुरुक्षेत्र के युद्ध में भी बहुत गहरे बैठे हुए हैं। कुरुक्षेत्र की रचना-प्रेरणा में 'कलिंग विजय' की कविता के दौरान कौंधते प्रश्नों की चमक सक्रीय रही है : यह बात 'दिनकर' ने कुरुक्षेत्र की भूमिका में स्पष्ट की है, लेकिन देश और काल की प्रतिच्छायाएँ और प्रतिध्वनियाँ इतनी सूक्ष्म और तीखी होती हैं कि वे व्यापक संवेदना वाले रचनाकार के भीतर धँसकर गुप्त रूप से रचना-प्रक्रिया को सशक्त बनाती हैं। इनकी भूमिका व्यापक सांस्कृतिक धरातल पर सोचते हुए रचनाकार को 'स्वधर्म और स्वराज्य' की चिन्ताओं के समाधान के चिन्तन के लिए तत्पर करती हैं। 'दिनकर' इसी चिन्तन-प्रक्रिया से प्रसूत निर्णय के आधार पर 'यह देश एक है' निबन्ध में कहते हैं— "धार्मिक विश्वास की एकता मनुष्यों की सांस्कृतिक एकता को जरूर पुष्ट करती है। इस दृष्टि से, एक तरह की एकता तो वह है, जो हिन्दू समाज में मिलेगी, जो मुस्लिम समाज में मिलेगी, जो पारसी-क्रिस्तानी समाज में मिलेगी, लेकिन धर्म के केन्द्र से बाहर जो संस्कृति की विशाल परिधि है, इसके भीतर बसने वाले सभी भारतीयों के बीच एक तरह की सांस्कृतिक एकता भी है, जो उन्हें दूसरे देशों के लोगों से अलग करती है।...यही वह सांस्कृतिक एकता या

शक्ति है, जो भारत को एक रखे हुए है। यही वह विशेषता है जो उन लोगों में पैदा होती है, जो एक देश में रहते हैं, एक तरह की जिन्दगी बसर करते हैं। एक तरह के दर्शन और एक तरह की आदतों का विकास करके एक राष्ट्र के सदस्य हो जाते हैं।” (हमारी सांस्कृतिक एकता पुस्तक से जिसका एक निबन्ध ‘साहित्य अमृत’, अगस्त, 2008 में ‘प्रतिस्मृति’ स्तम्भ में प्रकाशित हुआ—पृ० 10-11)।

इस सांस्कृतिकता का एक महत्वपूर्ण और मुख्य तत्व है— ‘सत्य’। दूसरा तत्व है— ‘अहिंसा’। इन दोनों के द्वन्द्व से जन्मा है— ‘दिनकर’ का कुरुक्षेत्र खण्डकाव्य। क्या सत्य की रक्षा के लिए हिंसा का सहारा अनिवार्य हो जाता है? क्या ‘गाँधी’ की रक्षा ‘गाँधीगिरी’ से नहीं हो सकती है? अन्याय के प्रतिकार का युद्ध से इतर कोई उपाय है या नहीं? क्या युद्ध समूहगत भावना का परिणाम है या सत्ता—लोलुप व्यक्ति की आकांक्षा का दुष्फल? क्या युद्ध व्यक्ति का स्वभाव है? देश और काल के पार इतिहास में व्यक्ति—सत्य से निरपेक्ष ‘एक ऐसा भी पुरुष है, जो विकल बोलता कुछ भी नहीं, पर रो रहा मग्न चिन्तालीन अपने—आप में।’ वह पुरुष धर्मराज युधिष्ठिर है, जो सोच रहा है— ‘पाँच ही असहिष्णु नर के द्वेष से, हो गया संहार पूरे देश का।’ जो यह भी सवाल उठा रहा है कि आदमी के रक्त से सना राज्य भोगने लायक है भी या नहीं? दिनकर ‘कुरुक्षेत्र’ की भूमिका में प्रश्न को खोलते हैं— “युद्ध निन्दित और क्रूर कर्म है; किन्तु उसका दायित्व किस पर होना चाहिए? उस पर, जो अनीतियों का जाल बिछाकर प्रतिकार को आमंत्रण देता है? या उस पर, जो जाल को छिन्न—भिन्न कर देने के लिए आतुर है? पाण्डवों को निर्वासित करके एक प्रकार की शान्ति की रचना तो दुर्योधन ने भी की थी; तो क्या युधिष्ठिर महाराज को इस शान्ति को भंग नहीं करना चाहिए था?” (भूमिका, कुरुक्षेत्र)। भीष्म और युधिष्ठिर का आलम्बन लेकर ‘दिनकर’ ने इस पागल कर देने वाले प्रश्न का उत्तर देने की कोशिश की है। इस प्रयास में वह यह भी स्पष्ट करते हैं— “मैं जरा भी दावा नहीं करता कि ‘कुरुक्षेत्र’ के भीष्म और युधिष्ठिर, ठीक—ठीक, महाभारत के ही युधिष्ठिर और भीष्म हैं।” — (भूमिका, कुरुक्षेत्र)

युधिष्ठिर के भीतर जन्मा युद्ध के बाद का ग्लानि—भाव उनके आदर्श मन का शुचितम् उदभाव है। यह ग्लानि, युद्ध के प्रति घृणा और मनुष्य के अभिमान के प्रति वितृष्णा से उन्हें भर देती है। युधिष्ठिर के प्राण का परिताप इतना आवेगमय है कि वह हस्तिनापुर के लिए लड़ी गई लड़ाई में हार किसकी और जीत किसकी या कैसी, इसकी अन्तरसंधि के पार धकेल दिए जाते हैं। कृष्ण द्वारा कहा गया ज्ञान—वाक्य ‘युद्ध’ अनघ है’ भी उन्हें विभ्रम से बाहर नहीं निकाल पाता। नरसंहार उनकी दृष्टि में पाप कर्म और राजसुख लोहू—भरी कीच का कमल है।

एक और सत्यमयीक गीता भगवान की है,

एक ओर जीवन की विरति प्रबुद्ध है।

जानता हूँ लड़ना पड़ा हो विवश, किन्तु
लोहू—सनी जीत मुझे दीखती अशुद्ध है।

ध्वंसजन्य सुख या कि साश्रु दुःख शान्तिजन्य,

ज्ञात नहीं, कौन बात नीति के विरुद्ध है।

जानता नहीं मैं कुरुक्षेत्र में खिला है पुण्य,

या महान पाप यहाँ फूटा बना युद्ध है। (कुरुक्षेत्र, पृ0 12)।

युधिष्ठिर का विरक्ति-संघनन और पश्चाताप-परिताप इतना प्रबल है कि वह या तो वन में अकेले भाग जाना चाहते हैं या भाइयों के संग कहीं भीख माँग-माँग कर मर जाना चाहते हैं। रामधारी सिंह 'दिनकर' धर्म-अधर्म, नीति-अनीति, विवेक-अविवेक, पुण्य-पाप के ध्रुवान्तों से बार-बार टकराते हैं और युधिष्ठिर के भीतर दुःख से, खेद से, निर्वेद के आघात से साकार होते आदर्श मानव की नियति पर विचार करते हैं। विचार करते हैं और भीष्म पितामह की वाणी में बैठकर युद्ध-जनित गूढ़ प्रश्नों के तर्कसम्मत और युगानुकूल उत्तर देते हैं। लगता है भीष्म में भारतवर्ष का शौर्य उवाच रहा है और दुष्परिमेय शोक में डूबे कौन्तेय के रूप में भारत-जन का संस्कृति-मन सुन रहा है, गुन रहा है, शान्ति की खोज में स्वयं के कर्म का अनुपात नाप रहा है। पितामह भीष्म व्यक्ति के अभिमान, जन-जन में विकारों की जलती शिखाओं और क्षोभ से, दाहक घृणा से, गरल, ईर्ष्या, द्वेष से धधकते समुदाय के आकाश को युद्ध के मूल में स्थित पाते हैं और इनके परिशमन और प्रतिकार के लिए युद्ध को अनिवार्य मानते हैं-

युद्ध को तुम निन्द्य कहते हो, मगर,

जल तलक हैं उठ रहीं चिनगारियाँ।

भिन्न स्वार्थों के कुलिश-संघर्ष की,

युद्ध तब तक विश्व में अनिवार्य है। (कुरुक्षेत्र, पृ0 17)।

धर्मराज युधिष्ठिर द्वारा उठाए गए पाप-पुण्य के सवाल को 'दिनकर' ने पितामह भीष्म के द्वारा उत्तरित करते हुए उन्हें एक भावात्मक किन्तु तार्किक विस्तार दिया है तथा उन्हें 'स्वधर्म' और 'स्वराज' से जोड़ा है। भारतीय मनीषा ने स्वधर्म और स्वराज्य तथा सुराज का पारस्परिक सम्बन्ध माना है। मैजिनी का कथन था- "स्वर्ग और भूतल में कोई दूर का अन्तर नहीं है, अपितु ये दोनों एक ही वस्तु के दो कोण हैं; उसी भाँति पौरात्य मन की यह परिपक्व धारणा और विश्वास रहा है। इस स्वधर्म की कल्पना भी स्वराज्य से भिन्न नहीं है, ये दोनों ही साध्य और साधन के रूप में परस्पर संलग्न हैं। स्वधर्म के अभाव में स्वराज्य भी त्याज्य है और स्वराज्य के न होने पर स्वधर्म भी बलहीन होता है।" ("रचना, जनवरी-अप्रैल, 2008, पृ. 9)। 'दिनकर' ने भी कुछ इसी तरह स्वधर्म और स्वराज्य से संपृक्त मूलभूत तथ्यों को उजागर करते हुए तप, करुणा, क्षमा को व्यक्ति धर्म और स्वधर्म की शोभा स्वीकार किया है, लेकिन जब स्वराज्य की रक्षा या समुदाय के हित का प्रश्न उपस्थित होता है, तब महाभारत की अनिवार्यता भी स्वीकार की है; क्योंकि इस भूतल को स्वर्ग बनाने के लिए परिस्थिति विशेष में जरूरी भी हो जाता है। मैथिलीशरण गुप्त ने 'साकेत' में राम के मुख से इसी स्वधर्म और स्वराज्य,

भूतल और स्वर्ग की पारस्परिकता को उद्घाटित कराया है— “संदेश यहाँ मैं नहीं स्वर्ग का लाया, इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया।” ‘दिनकर’ भी स्वधर्म को स्वराज्य से एकीभूत करते हुए पाप-पुण्य को परिभाषित करते हैं—

*छीनता हो स्वत्व कोई, और तू
त्याग-तप से काम ले यह पाप है।*

पुण्य है विच्छिन्न कर देना उसे

बढ़ रहा तेरी तरफ जो हाथ है। (कुरुक्षेत्र, पृ. 16)।

ज्ञात है कि विश्व के सन्नश्रेष्ठ काव्य रामायण, महाभारत और ओडिसी युद्ध काव्य हैं। ‘स्वधर्म के लिए उठो और स्वराज्य की स्थापना करो।’ इस तत्व ने भारत सहित संसार में कितने दैनिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक चमत्कार किए हैं। उपनिषद के ‘उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्नि बोधते’ उठो, जागो और अपने प्राप्य को प्राप्त करो में स्वधर्म आलोकित हो रहा है। स्वामी समर्थ रामदास ने आज से लगभग 300 वर्ष पूर्व मराठों से भारतवासियों को यही आह्वान किया था—

धर्मासाठी मरावें, मरोनी अवध्यांसि मारावें।

मरिता मारिता ध्वावें, राज्य आपुले।।

भारत-राष्ट्र की राजनीतिक स्वतंत्रता के लिए भारत का जन-मानस उत्कट राष्ट्रीय भावनाओं से आन्दोलित था, ऐसे समय कवि ‘दिनकर’ का उदय हुआ। ब्रिटिश शासन के प्रति विरोध, विद्रोह, विध्वंस और विप्लव का स्वर सब कहीं सुनाई पड़ रहा था। स्वतंत्रता राष्ट्रीय स्तर पर और वैयक्तिक स्तर पर दोनों जगह अपना महत्व और मूल्य रखती है। ‘स्वतंत्रता जाति की लगन है, व्यक्ति की धुन है, वह बहती हुई बस्ती नहीं, भीतरी गुण है।’ यह रहस्य कवि ‘दिनकर’ जानते हैं। समता-स्वतंत्रता की स्थापना और उसके प्रति गंभीर चिन्तन भारत का वैशिष्ट्य है, ‘दिनकर’ का कवि राष्ट्रीय समरांगण में दहाड़ उठता है—

दहक रही मिट्टी स्वदेश की, खौल रहा गंगा का पानी,

प्राचीरों से गरज रही है, जंजीरों में कसी जवानी।

अर्पित करो समिध, जाओ हे, समता के अभिमानी,

इसी कुण्ड से निकलेगी, भारत की लाल भवानी।।

रामधारी सिंह ‘दिनकर’ का समय स्वतंत्रता-आन्दोलन का था। अंग्रेजों की भारत को उपनिवेश बनाकर रखने की नीति और भारत-जन पर उनके दमन-चक्र के प्रति आक्रोश ‘कुरुक्षेत्र’ के युधिष्ठिर और भीष्म के प्रश्नों-प्रतिप्रश्नों में मुखर हुआ है। आलोचकों ने ‘दिनकर’ की कविता को क्रोध की कविता भी कहा है। देश के लिए यदि गाँधी (शान्ति) की रक्षा करनी है, तो तलवार उठाना भी जरूरी है। जिन स्थानों को देखकर हम जीवन का सम्पूर्ण देख सकते हैं, पा सकते हैं, उन स्थानों पर हमें निरा पत्थर और पानी दिखाई देने लगे, तो यह दृष्टि की खोट है। अतः दृष्टि का बदलना जरूरी हो जाता है। ‘दिनकर’ शान्ति और युद्ध के दोलन में कुरुक्षेत्र के षष्ठ सर्ग और सप्तम सर्ग में झूलते हैं। 1909 में गाँधी जी हिन्द स्वराज्य में जिन मुद्दों पर गहन चिन्तन करते हैं, उन्हीं शान्ति, अहिंसा, तप, त्याग, प्रेम जैसे बिन्दुओं पर ‘दिनकर’ कुरुक्षेत्र में सोचते हैं। 1921 में गाँधी जी ने हिन्द स्वराज्यक

पुस्तक के बारे में कहा था— “यह द्वेषधर्म की जगह प्रेमधर्म सिखाती है, हिंसा की जगह आत्मबल को रखती है। पशुबल से टक्कर लेने के लिए आत्मबल को खड़ा करती है (हिन्दक स्वराज्य—उपोद्घात, पृ. 8)।” स्वतंत्रता संग्राम है। स्वधर्म है। स्वराज्य है। भारत की सांस्कृतिक विरासत है। गाँधी है। तिलक है। गोखले हैं। उग्रवादी हैं। क्रान्तिकारी हैं। लगता है असहयोग, अवज्ञा, नमक, सत्याग्रह, उपवास का आचरणकर्ता गाँधी ही का रूप कुरुक्षेत्र का युधिष्ठिर है और उग्रवादी नेता या भारत का क्रान्तिकारी मानस भीष्म पितामह के रूप में कुरुक्षेत्र में बोल रहा है।

दिनकर के सामने उनका समय है। उस समय में ऊपजी विज्ञान—उद्योग—शोषण की विद्रूपताएँ हैं। ‘दिनकर’ युधिष्ठिर के बहाने बहुत गहरे में अपने समय की खँगाल करते हैं। दर्शन की मनोमय भूमि पर ही खड़े नहीं हैं, उसके पहले वे अन्नमय और विज्ञानमय कोष की गलियों में खड़े प्रश्नों को समादृत करते हैं। मस्तिष्क और हृदय की फाँकों को वे मानवता के लिए खतरनाक मानते हैं और यह सच आज हमारे सामने नग्न रूप में खड़ा है। ‘किन्तु, बढ़ता गया मस्तिष्क ही निःशेष, छूटकर पीछे रह गया है हृदय का देश।’ इसलिए समन्वय और संतुलन आवश्यक है। शान्ति के लिए युद्ध आवश्यक है। रक्षा के लिए भी युद्ध आवश्यक है। केवल भाग्य के भरोसे जीवन नहीं जिया जा सकता। कर्म और कर्म ही अन्तिम साधन है, सत्य है।

ब्रह्मा से कुछ लिखा भाग्य में, मनुज नहीं लाया है,

अपना सुख उसने अपने, भुजबल से ही पाया है।

नर—समाज का भाग्य एक है, वह श्रम, वह भुज—बल है,

जिसके सम्मुख झुकी हुई पृथिवी, विनीत नभ—तल है।

(कुरुक्षेत्र, सप्तम सर्ग, पृ. 79-81)

इस सन्दर्भ में प्रेमचन्द्र की ‘दो बैलों की कथा’ का वह प्रसंग याद आता है, जब रास्ते में हीरा—मोती को सामने से सांड डौंकता हुआ उनकी तरफ आता दिखाई देता है। सांड हाथी जैसा बलिष्ठ है। उससे भिड़ना जान से हाथ धोना है, लेकिन न भिड़ने पर भी तो जान बचती नजर नहीं आती है। ‘मोती ने कहा— “भाग क्यों चलें?” हीरा ने कहा— “भागना कायरता है।’ दोनों उपाय सोचते हैं— “उपाय यही है कि उस पर दोनों जाने एक साथ चोट करें। मैं आगे से रगदता हूँ, तुम पीछे से रगदो, दोहरी मार पड़ेगी तो भाग खड़ा होगा। ज्यों ही मेरी ओर झपटे तुम बगल से उसके पेट में सींग घुसेड़ देना। जान जोखिम में है, पर दूसरा उपाय नहीं।’ यही हुआ भी। शत्रु जब द्वार पर ही आ गया हो, तबग आत्मरक्षा में संघर्ष के सिवाय और कोई चारा नहीं है। जीवन उन्हीं का है, जिनमें जिजीविषा है—

जीवन उनका नहीं युधिष्ठिर,

जो उससे डरते हैं।

वह उनका, जो चरण रोप,

निर्भय होकर लड़ते हैं। (कुरुक्षेत्र, सप्तम सर्ग, पृ. 91)।

फिर भी बहुत ईमानदारी से ‘दिनकर’ से पूछे कि मनुजता युद्ध के बीच

बचेगी या शान्ति में पनपेगी, पल्लवित होगी? तो उत्तर मिलता है कि गुण-दोषमय विश्व में परिस्थिति के अनुसार विवेकजन्य कर्म और जीवन का रक्षण अनिवार्य है— यह नीति भी है और स्वधर्म भी। दूसरे क्रम में 'दिनकर' युधिष्ठिर की उम्मीदों और आशाओं में एक धर्म की दीपक जलाकर जली सूखी रसा के प्राणों को सरस करके विश्व में समता, सदभावक और शान्ति की अमृत-धार बहाना चाहते हैं। 'दिनकर' के युधिष्ठिर से दिनकर के पितामह भीष्म कहते हैं—

फूलों पर आँसू के मोती, और अश्रु में आशा।
मिट्टी के जीवन की छोटी, नपी-तुली परिभाषा।।
आशा के प्रदीप को जलाए चलो धर्मराज,
एक दिन होगी मुक्त भूमि रण-भीति से।
(कुरुक्षेत्र, सप्तम सर्ग, पृ. 107)।

भारत स्वतंत्र हुआ। जो जीवन-मूल्य स्वतंत्रता-संग्राम में हमारी ताकत थे, आजादी मिलने के बाद शनैः शनैः उन्हें किनारे कर दिया गया। जिस सामाजिकता और पारस्परिकता ने भारत के संस्कृति-कुण्ड में स्नान कर समय-समय पर नई शक्ति प्राप्त की, उस संस्कृति-कुण्ड को रूके हुए जल की संज्ञा देकर उसकी उपेक्षा की जाने लगी। मनुष्य से मानवता छिटक गई। राजतंत्र निरंकुश और अत्याचारी हो उठा। शोषण नए-नए देश में दलितों-पतितों-किसानों-निःशक्तों के शोषण की उद्भूत हुआ। यह दूसरे प्रकार का पराधीनता-फंदा था, जो असंतोष और सामाजिक-आर्थिक वैषम्य को जन्म देता है। 'दिनकर' ने इनसे उत्पन्न स्थिति की विशद चर्चा कुरुक्षेत्र में की है और शान्ति के उपाय रेखांकित करते हुए उसके स्थापित होने की कामना की है। रामधारी सिंह 'दिनकर' राष्ट्र की सांस्कृतिकता के उद्गाता हैं, उनकी कविता 'परहित निरत मानव' के माध्यम से इस भू पर स्वर्ग का आह्वान और शान्ति की स्थापना करने वाली पर्णकुटधारी कविता है, जो 'संस्कृति के अध्याय' रचती है।